ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 125-127
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

कुमारी सौरभ
ग्राम+पो०– बांस बिगहा, जिला– पटना (बिहार), भारत

Received-20.08.2023, Revised-26.08.2023, Accepted-01.09.2023 E-mail: akbar786ali888@gmail.com

सारांश: *भारत ग्रामीण सामाजिक संरचना का अध्ययन अनेक ग्रामीण समाजशास्त्रियों द्वारा किया गया है। एस. सी. दुबे, एम. एन. श्रीनिवास, डी. एन. मजूमदार, बी. आर. चौहान, मैकिम मैरिएट, सिंगर तथा रॉबर्ट रेडफील्ड के नाम इन विद्वानों में उल्लेखनीय हैं। रॉबर्ट रेडफील्ड ने भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना का उल्लेख करने के लिए परिवार, नातेदारी, धर्म, जाति, शिक्षा, सत्ता एवं अर्थ व्यवस्था आदि आधारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। डॉ. दुबे ने इनके अतिरिक्त मूल्य–व्यवस्था को भी भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिए आवश्यक माना है। अन्य विद्वानों ने इन्हीं आधारों में अल्प संशोधन करते हुए इन्हें स्वीकार किया है। ऐसी स्थिति में हम रेडफील्ड तथा दुबे द्वारा प्रस्तुत आधारों को भारतीय ग्रामों की सामाजिक संरचना को समझने के लिए प्रयुक्त कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि यदि हम केवल रेडफील्ड द्वारा प्रस्तुत आधारों को ही कसौटी मानकर चलें तो भारत के विभिन्न ग्रामों की सामाजिक संरचना भी एक–दूसरे से भिन्न दिखाई देगी। उदाहरण के लिएय जिस गाँव में एक जाति अथवा धर्म के लोग रहते हैं, वहाँ की सामाजिक संरचना उस गाँव की सामाजिक संरचना से भिन्न होगी जहाँ अनेक धर्मों और जातियों के लोग साथ–साथ रहते हैं। यदि हम केवल सामाजिक मूल्यों को ही आधार मान लें तो विभिन्न क्षेत्रों की ग्रामीण सामाजिक संरचना में अत्यधिक भिन्नता पायी जायेगी क्योंकि व्यावहारिक रूप से विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियाँ आज एक–दूसरे से अत्यधिक भिन्न हैं। इसका तात्पर्य है कि भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना का अध्ययन उन सामान्य विशेषताओं के आधार पर किया जाना चाहिए जो सभी क्षेत्रों में बहुत कुछ समान रूप से देखने को मिलती हैं।*

कुंजीभूत शब्द– ग्रामीण सामाजिक संरचना, परिवार, नातेदारी, धर्म, जाति, शिक्षा, सत्ता, अर्थ व्यवस्था, मूल्य–व्यवस्था, आत्मनिर्भर।

भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना का अध्ययन करने के लिए प्रो. दुबे ने कुछ सुझावों का उल्लेख किया है जिनके आधार पर ग्रामीण संरचना को अधिक व्यवस्थित रूप से समझा जा सकता है। आपका विचार है कि सर्वप्रथम गाँवों की सामाजिक संरचना का अध्ययन करने के लिए ग्रामीण समुदाय में विद्यमान आन्तरिक सम्बन्धों, समूहों तथा समुदायों के अन्तर्गत विद्यमान उप–समुदायों के स्वरूपों को समझना होगा। दूसरे, गाँव को एक स्वतन्त्र और आत्मनिर्भर इकाई के रूप में देखना आवश्यक है क्योंकि गाँव अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक स्वतन्त्र इकाई होता है। इसके अतिरिक्त गाँव को सम्पूर्ण भारतीय समुदाय के सन्दर्भ में भी देखना चाहिए क्योंकि कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रत्येक गाँव भारत के दूसरे भागों पर भी निर्भर रहता है। डॉ. दुबे का विचार है कि गाँव की सामाजिक संरचना का अध्ययन करने के लिए एक गाँव को विभिन्न प्रतिमानों में इस प्रकार विभक्त करना आवश्यक है जिससे इन विभिन्न प्रतिमानों का समुचित रूप से अध्ययन करके एक सामान्य विशेषता प्रस्तुत की जा सके। इस दृष्टिकोण से डॉ. दुबे ने ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिए दो दृष्टिकोणों को प्रमुख स्थान दिया है : 1. ग्राम एक विशिष्ट और पृथक् करने योग्य इकाई के रूप में, 2. ग्राम एक विस्तृत अन्तर्ग्रामीण समुदायों को जोड़ने वाली लघु इकाई के रूप में।

ग्रामीण सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली निम्नलिखित प्रमुख इकाइयाँ हैं :

(1) परिवार तथा नातेदारी– ग्रामीण सामाजिक संरचना की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति है, जिसकी स्थिति का निर्धारण प्राथमिक रूप से उसके परिवार तथा नातेदारी व्यवस्था के आधार पर होता है। ग्रामीण परिवार या तो विस्तृत होते हैं अथवा संयुक्त। यह परिवार प्रमुख रूप से पितृसत्तात्मक होते हैं। परिवार के सभी सदस्य कृषि कार्य के द्वारा आजीविका उपार्जित करते हैं, अतः किसी भी सदस्य को अपने लिए एक पृथक् परिवार की आवश्यकता नहीं होती। परिवार में मुखिया अथवा कर्ता की सत्ता असीमित होती है । इसका तात्पर्य है कि कोई भी सदस्य कर्ता की अनुमति के बिना कोई कार्य नहीं कर सकताय साथ ही परिवार के सदस्यों के कार्यों का विभाजन तथा विवादों का निपटारा करना भी कर्ता के ही अधिकार में होता है। परिवार के सभी सदस्य एक ही स्थान पर निवास करते हैं, एक ही रसोई में भोजन करते हैं, एक सामान्य सम्पत्ति का उपभोग करते हैं तथा विभिन्न कर्मकाण्डों, उत्सवों और त्यौहारों में सामूहिक रूप भाग लेते हैं। परिवार की स्थिति ही व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करती है। इस .ष्टिकोण से ग्रामीण सामाजिक संरचना में परिवार को एक केन्द्रीय और मौलिक इकाई माना जा सकता है।

ग्रामीण सामाजिक संरचना में विवाह दो व्यक्तियों का सम्बन्ध नहीं है, बल्कि दो परिवारों का सम्बन्ध है। इसके फलस्वरूप गाँव में नातेदारी व्यवस्था का महत्व किसी भी दूसरे समुदाय की अपेक्षा कहीं अधिक है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत रक्त तथा विवाह से सम्बन्धित व्यक्ति एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहते हैं। किसी भी कठिनाई अथवा अभाव के समय नातेदारों अथवा बन्धु–बान्धवों का सहयोग लेना आवश्यक समझा जाता है। अनेक परिस्थितियों में नातेदारी समूह के द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण भी रखा जाता है। नातेदारी व्यवस्था ग्रामीण सामाजिक संरचना को किस सीमा तक प्रभावित करती है, इसे विवाह से सम्बन्धित मान्यताओं के आधार पर सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। साधारणतया लड़की देने वाले गाँव को लड़की लेने वाले गाँव से नीचा माना जाता है। यही कारण है कि एक बार जिस गाँव से किसी परिवार की लड़की प्राप्त की जाती है, वर–पक्ष के गाँव द्वारा कन्या–पक्ष के उस सम्पूर्ण गाँव में लड़की

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

देना उचित नहीं समझा जाता। लेविस ने रानीखेड़ा गाँव में अध्ययन करके यह स्पष्ट किया कि इस गाँव की 266 विवाहित स्त्रियों में से 200 स्त्रियाँ 40 किलोमीटर की दूरी तक स्थित दूसरे गाँवों से आई हैं जबकि इस गाँव की 220 लड़कियों का विवाह अन्य 200 गाँवों में हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि 150 परिवारों वाले इस छोटे से गाँव का केवल विवाह के आधार पर ही अन्य 400 गाँवों से सम्बन्ध स्थापित हो गया। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह गाँव 400 अन्य गाँवों से नातेदारी व्यवस्था के द्वारा सम्बन्धित हो गया। यही वह व्यवस्था है, जो एक गाँव की सामाजिक स्थिति, उसकी शक्ति तथा सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित करती है।

(2) जाति–संस्तरण– भारत की ग्रामीण सामाजिक संरचना को स्पष्ट करने वाली दूसरी मुख्य इकाई जाति–संस्तरण है। साधाणतया प्रत्येक गाँव के अन्तर्गत व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध जातिगत संस्तरण तथा जाति से सम्बन्धित मान्यताओं के आधार पर ही निर्धारित होते हैं। यही कारण है कि एक जाति–समूह की सामाजिक स्थिति दूसरे जाति–समूह की तुलना में ऊँची अथवा नीची होती है। यद्यपि प्रत्येक जाति का व्यवसाय परम्परागत होता है लेकिन कृषि व्यवसाय में भी जाति का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। अनेक उच्च जातियाँ अपनी जाति सम्बन्धी मान्यताओं के कारण अपनी भूमि होते हुए भी उस पर हल नहीं चलातीं, जबकि निम्न जातियाँ भूमि न होने पर भी मजदूरी लेकर भूमि पर हल चलाना अपने लिए आवश्यक समझती हैं। गाँवों में आज भी कोई व्यक्ति अपनी जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकता। खान–पान, सामाजिक सहवास तथा सम्पर्क के क्षेत्रों में जाति के प्रतिबन्ध आज भी कठोर बने हुए हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक अधिनियमों के बन जाने के बाद भी गाँव की सामाजिक संरचना में अस्पृश्यता का प्रचलन बना हुआ है। तथा हरिजनों के निवास स्थान उच्च जातियों से दूरी पर स्थित होते हैं। यह सच है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों की ग्रामीण सामाजिक संरचना में जातिगत नियमों से सम्बन्धित कुछ भिन्नता देखने को मिलती है लेकिन इसके पश्चात् भी ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिए प्रमुख इकाई के रूप में जाति–संस्तरण के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

(3) मूल्य–संरचना– प्रत्येक गाँव स्वयं में एक इकाई है और इस रूप में प्रत्येक गाँव का सामाजिक जीवन कुछ ऐसे मूल्यों अथवा आदर्श नियमों से बँधा रहता है जिन्हें ग्रामीण अपने जीवन के लिए आवश्यक समझते हैं। इनमें कुछ मूल्य ऐसे हैं जिनका विस्तार एक बड़े क्षेत्र में पाया जाता है, जबकि अनेक मूल्य ग्रामीण परम्परा अथवा वंश–परम्परा से सम्बन्धित होने के कारण एक गाँव की अपनी पृथक् विशेषता के रूप में देखने को मिलते हैं। इन सामाजिक मूल्यों के द्वारा ही व्यक्तिगत व्यवहारों का निर्धारण होता है तथा यह मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। नगरों से शिक्षा प्राप्त करके लौटने वाले युवक इनमें से अनेक मूल्यों को अब अपने लिए आवश्यक नहीं समझते, लेकिन ऐसे व्यवहारों को ग्रामीण सामाजिक संरचना में अच्छा नहीं समझा जाता। वास्तविकता यह है कि मूल्यों के आधार पर नई और पुरानी पीढ़ी के बीच कुछ मतभेद उत्पन्न हो जाने के बाद भी भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में अब भी परम्परागत सामाजिक मूल्यों का प्रभाव कम नहीं हो सका है ।

(4) धर्म– धर्म पारलौकिक जीवन से सम्बन्धित उच्चतर लक्ष्य को स्पष्ट करता है। कोई समाज कितना ही आदिम अथवा सभ्य क्यों न हो, धर्म सभी समाजों की एक अनिवार्य और सर्वव्यापी विशेषता है। भारत के ग्रामीण जीवन में धर्म केवल विश्वास ही नहीं है बल्कि जीवन की एक ऐसी विधि है जिसका सम्पूर्ण सामाजिक संरचना पर एक स्पष्ट प्रभाव है। भारतीय ग्रामीण समुदाय में धर्म की कुछ विशेषताओं की अभिव्यक्ति स्थानीय विशेषताओं के रूप में देखने को मिलती है, जबकि अनेक धार्मिक विशेषताओं का सम्बन्ध सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन से है। यद्यपि धर्म से सम्बद्ध इस विविधतापूर्ण प्रकृति की विवेचना हम लघु और वृहत् परम्परा के अन्तर्गत कर चुके हैं लेकिन सामाजिक संरचना की एक इकाई के रूप में यहाँ धर्म का अपना पृथक महत्व है। भारतीय प्रामीण समुदाय धर्म–प्रधान है, अतः व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के निर्धारण में इसका विशेष योगदान देखने को मिलता है। ग्रामीण जीवन में जो व्यक्ति धार्मिक तथा पौराणिक ज्ञान में जितना अधिक निपुण होता है, उसे अपने समूह में उतनी ही उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त हो जाती है। वास्तविकता तो यह है कि ग्रामों में जातिगत संस्तरण के अनुसार, देवी–देवताओं के बीच भी एक विभाजन विद्यमान है। साधारणतया उच्च जातियों के बीच वृहत् परम्परा से सम्बन्धित देवी–देवताओं की प्रधानता है जबकि निम्न जातियों में स्थानीय देवी–देवताओं से सम्बन्धित विश्वासों की बहुलता देखने को मिलती है। धर्म से सम्बन्धित विश्वासों का स्वरूप चाहे कैसा भी हो, धार्मिक विश्वास प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को नियन्त्रित करते हैं तथा व्यक्ति को एक नियमित जीवन व्यतीत करने का प्रोत्साहन देते हैं। ग्रामीण जीवन कृषि पर आधारित होने के कारण प्राकृतिक शक्तियों का धर्म में विशेष स्थान है तथा इससे अनेक जादुई क्रियाएँ सम्बद्ध हो गई हैं। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ धर्म से सम्बन्धित सभी कर्मकाण्डों का सम्बन्ध पवित्रता तथा अपवित्रता सम्बन्धी धारणाओं से है। लगभग सभी गाँवों में धर्म पर परिवार तथा वंश–परम्परा की स्पष्ट छाप है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ग्रामीण जीवन को धर्म से पृथक् करके उसकी सामाजिक संरचना को स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

(5) ग्राम पंचायत– भारतीय ग्रामीण संरचना में अत्यधिक प्राचीन काल से ही गाँव पंचायतों का महत्व सर्वोपरि रहा है। गाँव पंचायतें केवल ग्रामीण शक्ति तथा नेतृत्व का ही आधार नहीं रही हैं, बल्कि ग्रामीण सामाजिक संरचना को संगठित करने में भी इनका योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। परम्परागत रूप से गाँव पंचायत एक अथवा समीपवर्ती कुछ गाँवों के बीच पाँच सम्मानित व्यक्तियों की एक ऐसी इकाई थी जो सामाजिक नियन्त्रण तथा सुधार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करती थी। आज जबकि गाँव पंचायतों को नये सिरे से संगठित किया जा चुका है, इसमें परम्परा तथा आधुनिकता के तत्वों का साथ–साथ प्रभाव देखने को मिलता है। नई मतदान प्रणाली के कारण विभिन्न जातियों तथा वर्गों के व्यक्तियों को गाँव पंचायतों में प्रतिनिधित्व मिलने लगा है, लेकिन मुख्य रूप से यह पंचायतें आज भी परम्परागत जाति–व्यवस्था, आनुवंशिकता तथा प्रभु–जातियों से प्रभावित हैं। ग्रामीण संरचना के अन्तर्गत अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों तथा विभिन्न समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्धारण करने में पंचायतें प्रभावपूर्ण भूमिका निभाती हैं। पंचायतों के नवीन प्रशासनिक तथा

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- III, Issues-29, YEAR- July-Sept.-2023

राजनीतिक अधिकारों के कारण पंचायतें आज नेतृत्व तथा प्रजातान्त्रिक प्रशिक्षण का केन्द्र बनी हैं।

(6) आर्थिक संरचना– स्मिथ का कथन है कि "कृषि एवं सामूहिक उपक्रम ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था के आधार हैं। इस दृष्टिकोण से 'कृषक' तथा 'ग्रामीण' शब्द एक–दूसरे के लगभग समान हैं।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण संरचना को समझने के लिए ग्रामीण आर्थिक संरचना को समझना भी अति आवश्यक है। वास्तविकता यह है कि ग्रामीण अपनी भूमि के साथ भावनात्मक रूप से जुड़े रहते हैं तथा उनकी सामाजिक स्थिति का निर्धारण भी एक बड़ी सीमा तक उनके भू–स्वामित्व के आधार पर ही होता है। साधारणतया जो कृषक बड़ी भूमि के स्वामी हैं उनकी स्थिति छोटी भूमि के स्वामियों की तुलना में ऊँची होती है। इसके अतिरिक्त जिन गाँवों में परम्परागत प्रविधियों के द्वारा कृषि की जाती है, उनकी तुलना में ऐसे गाँवों को अधिक ऊँची स्थिति प्राप्त हो गई है जिनमें वैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा कृषि कार्य किया जाने लगा है। भारत में जब जमींदारी व्यवस्था का प्रचलन था तब व्यावहारिक रूप से गाँव की सभी जातियाँ विभिन्न शर्तों अथवा जजमानी प्रथा के आधार पर जमींदारों को अपनी सेवाएँ प्रदान करती थीं और बदले में फसल का कुछ भाग अथवा जीवन–यापन के लिए अन्य सुविधाएँ प्राप्त करती थीं। इसके फलस्वरूप भारत के ग्रामों में बचत और विनियोजन का पूर्ण अभाव था। वर्तमान समय में जमींदारी व्यवस्था समाप्त हो जाने तथा भू–स्वामित्व के रूप में परिवर्तन हो जाने के कारण ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन होने लगा है। आज एक ऐसी ग्रामीण अर्थव्यवस्था विकसित हो रही है जो मूल रूप से कृषि की नवीन प्रविधियों तथा प्रौद्योगिक ज्ञान पर आधारित है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को इसके प्रमुख तत्वों के आधार पर देखा जाये, तो स्पष्ट होता है कि आज कृषि इस अर्थ–व्यवस्था का आधार है। जजमानी व्यवस्था में एक बड़ी सीमा तक परिवर्तन हो गया है परन्तु ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था के एक तत्व के रूप में इसका महत्व आज भी बना हुआ है। गाँव में किसान जजमान होता है और ब्राह्मण, नाई, धोबी, बढ़ई, लोहार, कुम्हार तथा परम्परागत अस्पृश्य जातियाँ उसके परिजन अथवा प्रजा होती हैं। ये परिजन विभिन्न अवसरों पर जजमान को अपनी सेवाएँ देते हैं और जजमान उन सेवाओं के बदले उनको अनाज तथा द्रव्य देता है। इसके पश्चात् भी जजमान रूप में किसान शोषित हैं, जबकि परिजन जातियों की आर्थिक स्थिति में पहले की अपेक्षा बहुत अधिक सुधार हो गया है। ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था में तीसरा तत्व ग्रामीण–श्रम है। इसका तात्पर्य है कि आजीविका उपार्जित करने के लिए यहाँ शारीरिक श्रम का महत्व सर्वोपरि है। यह सच है कि ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था में कुटीर उद्योगों का भी प्रमुख स्थान है लेकिन साधारणतया कुटीर उद्योगों की प्रकृति स्वतन्त्र न होकर एक सहयोगी क्रिया के रूप में ही है। इसका तात्पर्य है कि कृषि से अतिरिक्त समय में ही ग्रामीण कुटीर उद्योगों के द्वारा आजीविका का एक छोटा भाग प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। वर्तमान युग में ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परा और आधुनिकता का समन्वय देखने को मिल रहा है। इसी का परिणाम है कि अब न केवल कृषि का व्यापारीकरण होने लगा है बल्कि इससे गाँवों में आर्थिक विभेदीकरण की प्रक्रिया को भी प्रोत्साहन मिल रहा।

(7) शिक्षा–व्यवस्था– भारतीय ग्रामीण संरचना में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है, लेकिन यहाँ शिक्षा सैद्धान्तिक न होकर कृषि, परम्परागत व्यवसाय तथा सांस्कृतिक सीख से सम्बन्धित है। व्यक्ति को आरम्भिक जीवन से ही अपने परिवार, नातेदारी समूह तथा जाति पंचायत द्वारा विभिन्न प्रकार की आर्थिक क्रियाओं तथा सामाजिक व्यवहारों के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। त्यौहारों, उत्सवों तथा कर्मकाण्डों के समय व्यक्ति को वह सम्पूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त होता है जिसका ग्रामीण जीवन में विशेष महत्व है। ग्रामीण जीवन में आज भी सैद्धान्तिक शिक्षा अधिक आवश्यक इसलिए नहीं समझी जाती कि ऐसी शिक्षा का कृषि–व्यवसाय में कोई विशेष उपयोग नहीं है। वर्तमान युग में अनेक विकास कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रौढ़ शिक्षा, सिलाई, बुनाई, मातृत्व शिक्षा तथा स्वास्थ्य से सम्बन्धित शिक्षा को महत्व दिया जाने लगा है, लेकिन ग्रामीण जीवन की परम्परावादिता के कारण इसके प्रति ग्रामीणों की रुचि में आशातीत वृद्धि नहीं हुई है। इसके पश्चात् भी यह सच है कि ग्रामीण शिक्षा का स्वरूप अब बदलने लगा है। गाँवों में प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर बहुत बड़ी संख्या में विद्यालय स्थापित हो जाने के फलस्वरूप नई पीढ़ी इस शिक्षा–व्यवस्था में रुचि लेने लगी है, लेकिन यह औपचारिक शिक्षा उनके जीवन प्रतिमानों में अधिक परिवर्तन उत्पन्न नहीं कर सकी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस० सी० दूबे : सोशल स्ट्रक्चर एण्ड प्रिजेन्ट कम्युनिटीज, इन रूरल सोशियोलॉजी इन इण्ड इण्डिया (इडी०) ए० आर० देसाई, पृ० –201–205.
2. ओस्कर लेविस : प्रिजेन्ट कल्चर इन इण्डिया एण्ड मैस्किो, इन मैकिम मैरिएट स, विलेज इण्डिया।
3. टी० एल० स्मीथ : द सोशियोलॉजी ऑफ रूरल लाइफ, पृ०–18.
4. एम० एन० श्रीनिवास : मैसूर के एक गाँव की सामाजिक व्यवस्था : मैकिम मैरिएट द्वारा सम्पादित पुस्तक (ग्रामीण भारत से उद्धत पृ० 1–36.
5. एस० सी० दूबे : एक भारतीय गाँव (अनुवाद– योगेश अटल), पृ०–74 .
6. बी० आर० चौहान : ए राजस्थान विलेज पृ०–311.

*****